JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास : स्त्री मन से स्त्री विमर्श तक

सुषमा ठाकुर, एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्षा,
कु.वि.आ.डी.ए.वी. महिला महाविद्यालय, करनाल (हरियाणा)

सारांशः

प्राचीन काल से विभिन्न परिस्थितियों के चलते समाज के कुछ वर्ग शोषण का शिकार बने जिनमें स्त्री वर्ग भी एक रहा। स्त्री के विभिन्न स्तरों पर होने वाले शोषण को आधुनिक कालीन हिंदी साहित्य में स्थान मिला। प्रथमतः पुरुष लेखकों ने उसकी शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, आत्मिक पीड़ा को स्वर दिया फिर धीरे–धीरे उसने स्वयं अपने भोगे दुख–दर्द, अन्याय, शोषण को साहित्य की विभिन्न विधाओं में शब्दबद्ध किया। भारत को स्वतंत्रता के बाद हिंदी में लेखिकाओं की संख्या बढ़ी। इन्हीं स्त्री साहित्यकारों में एक स्वर मैत्रेयी पुष्पा का भी है जो आज की जानी–मानी, बेबाक स्वर में अपनी बात रखने वाली एक निडर लेखिका स्वीकारी गई हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने कई उपन्यास हिंदी साहित्य को दिए जिनमें मुख्य रूप से स्त्री मन की उधेड़बुन, अन्याय और शोषण के विरोध में उठता उसका स्वर, अपने लिए बनी बंदिशों की दीवारों को तोड़ने की उसकी मशक्कत को ही दिखाया गया है। मुख्यतः ग्रामीण स्त्री की वर्तमान स्थिति क्या है, क्या होनी चाहिए थी, यही उनके उपन्यासों के मुख्य विषय हैं और यही आज ''स्त्री विमर्श'' के विषय भी हैं।

समय का चक्र घूमता रहा, आदि मानव से मानव बना, फिर सभ्य, सुसंस्कृत, सामाजिक मानव विकसित हुआ। भाषा गढ़ी गई, विकसित और परिष्कृत हुई। नवीन विचार आए, समाज में मान्य हुए तो विचारधाराएं बनी, मानवों के अलग–अलग समूहों की अलग–अलग संस्कृतियाँ विकसित हुईं।

जो भोगा गया, भाषा के विकास के बाद लिखा भी जाने लगा। साहित्य संस्कृति और विचारधारा अन्योन्याश्रित हैं। एक में कुछ नवीनता का समावेश होता है तो दूसरा और तीसरा भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते। युगों पहले से भारतीय परिवेश में अनेकानेक विचारधाराओं ने जन्म लिया, कुछ फली फूलीं, कुछ काल के गर्त में समा गईं, कुछ आज सैकड़ों वर्ष बाद भी जीवित हैं। कोई नया विचार कवि के मन में उपजा या उसने कहीं देखा, सुना, उसने उसे

अपनी किसी रचना में स्थान दिया, फिर वह साधारण जन तक पहुँचा, किसी समूह के द्वारा पसंद किया गया या उन्हें अपने ही मन का आइना लगा तो विचारधारा बन कर उसीने संस्कृति को गढ़ा। ये विचारधाराएं, जैसे– वैदिक विचारधारा, सगुण, निर्गुण, रीति, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, जनवाद, मार्क्सवाद, स्त्री स्वातंत्र्य, दलित विमर्श आदि आदि रूपों में इतिहास के बहुत प्राचीन पन्नों से होती हुई आज तक भारतीय जनमानस पर अपना प्रभाव छोड़ती हुई हिंदी साहित्य का हिस्सा बनती रहीं। इन्होंने भारतीयों की संस्कृति को भी प्रभावित किया। बहुत नवीन और योग्य जुड़ता गया, प्राचीन अयोग्य व अप्रासंगिक छूटता गया। बहुत कुछ योग्य, प्रासंगिक प्राचीन आज भी है, हमारी संस्कृति का अटूट हिस्सा बना हुआ है।

समय के साथ समाज के कई हिस्से परिस्थितिवश शोषण का शिकार बनने लगे। शक्तिशाली ने अपनी धौंस जमाना आरंभ कर दिया। मानव मानव में भेद होने लगा। जातीय सामाजिक व्यवस्थाएँ तो बनीं पर साथ ही धर्म, जाति, वर्ण, लिंग, वर्ग... जैसे न जाने कितने ही आधार भी गढ़ लिए गए भेदभाव के। जो शोषित होने लगा, लंबे समय तक शोषण का शिकार बना रहा, अति हो जाने पर धीरे–धीरे उसी ने सिर उठाना, विरोध करना आरंभ किया। उस विरोध को या तो उसने स्वयं स्वर दिया (यदि दे पाया तो) या उसके शोषण, उसकी पीड़ा से द्रवित हो किसी अन्य ने (जो इस योग्य था) उस शोषण और पीड़ा को स्वर दिए। ऐसे ही प्रयासों से समाज में सचेतनता आई अंग्रेज़ों के आने से भारतीयों पर पश्चिमीकरण का प्रभाव भी पड़ा। कई नए गवाक्ष खुले।

शोषण के शिकार समूह में स्त्री भी शामिल थी। अनेक पुरुष रचनाकार उसकी आवाज़ बने, उसकी पीड़ा को उन्होंने देखा, समझा और स्वर प्रदान किया लेकिन हमारे अपनों के प्रयासों से और पश्चिम के प्रभावस्वरूप धीरे–धीरे जब स्त्री शिक्षा को भारत में बढ़ावा मिला तो स्त्रियाँ स्वयं लेखन के क्षेत्र में आगे आईं। देश को स्वतंत्रता मिलने से पूर्व यह कार्य आरंभ हो गया था। महान लेखिका महादेवी वर्मा की सशक्त लेखनी और कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान के बुलंद, ओजस्वी स्वर वाली कविता ने अपना सिक्का मनवाया. लेकिन आज़ादी मिलने पर सन् 1960 के बाद अपने अथवा अपने समुदाय के यथार्थ को शब्दबद्ध करने हिंदी साहित्य के क्षेत्र में कई लेखिकाएं सामने आईं और उत्तरोत्तर इनकी संख्या बढ़ती चली गई। चित्रा मुदगिल, मालती जोशी, मन्नू भंडारी, मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, कृष्णा सोबती, सूर्यबाला, उषा प्रियंवदा, अनामिका, कुमकुम शर्मा सरीखी लेखिकाएं प्रकाश में आई ही नहीं खूब पढ़ी भी गईं और सराही भी गई। स्त्री स्वातंत्र्य स्त्री विमर्श एक महत्त्वपूर्ण विचारधारा के रूप में जाना–पहचाना गया। कुछ

आलोचक इसे बकवाद भी मानते हैं लेकिन इस सत्य को झुठलाया नहीं जा सकता कि यह विचारधारा आज का प्रमुख विषय बनी हुई है। अबला स्त्री, सबला होती स्त्री, स्त्री शिक्षा, शोषण या ज्यादती के विरुद्ध आँख दिखाती स्त्री, अपनी बुद्धिमता का लोहा मनवाती स्त्री, समाज द्वारा बनाए खांचों में फिट न होती स्त्री, घर संभालती कामकाजी स्त्री, घर व बच्चों की ज़िम्मेदारियों को पति के साथ आधा बाँटने पर उतारू स्त्री, शहर की स्त्री, गाँव की स्त्री, उपले पाथती या शराबी पति से मार खाकर भी अपनी अगली पीढ़ी की शिक्षा के लिए डटी स्त्री, अपनी देह पर अपना अधिकार दिखाने वाली नई स्त्री, पुरुषसत्तात्मक परिवेश में भी अपने अधिकारों के लिए जूझती स्त्री, अपनी इच्छाओं को मरने न देकर उन्हें पूरा करने को डटी स्त्री नु ये सब और इन जैसे और भी न जाने कितने ही स्त्री जीवन के इर्द–गिर्द के विषय स्त्री विमर्श का हिस्सा बन गए हैं जिन पर चर्चाएं भी होती हैं और साहित्य की विभिन्न विधाओं में इन पर लेखन भी जारी है।

अब इस लिखे का प्रभाव है या स्त्री की स्थिति में परिवर्तन को साहित्य उकेर रहा है, जो भी हो पर परिवर्तन तो है और उसका प्रभाव हमारे रहन–सहन के साथ सोच–विचार, आस्था–विश्वास पर भी हो ही रहा है अर्थात् हमारी संस्कृति पर भी धीरे–धीरे इन परिवर्तनों का प्रभाव हो ही रहा है।

मैत्रेयी पुष्पा आधुनिक समय को बहुचर्चित लेखिका है। उन्होंने सन् 1989 में लिखना आरंभ किया और उनके ससमत लेखन का प्रमुख विषय बनी – ग्रामीण स्त्री। अपनी लगभग प्रत्येक कहानी या उपन्यास में किसी एक अथवा अनेक नारी पात्रों के माध्यम से उन्होंने गाँव की स्त्री के संघर्षो को उकेरने का प्रयास किया है। समाज में चिरकाल से स्त्री को दोयम दर्जा प्राप्त है। शहर की स्त्री अपनी तरह की समस्याओं से जूझ रही है, गाँव की स्त्री अपनी तरह की मैत्रेयी जी के उपन्यासों में मुख्यतः 'उस' गाँव की कथा है जिसे लेखिका ने स्वयं जिया। वहाँ की स्त्री का जीवन, उसकी समस्याएँ जो लेखिका ने स्वयं भोगी या अपने आस–पास की स्त्री को भोगते देखा, वही दृश्य, कहानियाँ, पात्र, परिवेश, खेत–खलिहान, कच्चे–पक्के मकान, अभावग्रस्त जीवन, अपनी अस्मिता बचाती गरीब या अकेली स्त्री, कहीं–कहीं विद्रोहिणी हो गई स्त्री, कहीं शिक्षा के बलबूते अपने अधिकारों के प्रति सजग हो रही स्त्री, उनकी रचनाओं का विषय बनी है।

अपने समय का बहुचर्चित उपन्यास 'चाक' अनेकानेक नारी पात्रों के संघर्ष की कथा कहता है। अपने एक साक्षात्कार में मैत्रेयी जी ने कहा कि '''चाक' के स्त्री पात्रों की कहानियाँ कहकर उन्हें लगता है, उनके पास अपने गाँव की कोई और कथा कहने को शेष नहीं बची है।''[1] यह

उपन्यास सच में ही स्त्री पात्रों का, एक सजीव संग्रहालय है। रेशम, शारदा, गुलकंदी, शकुंतला, रुकमणी, रामदेई, नारायणी, पांचन्ना बीबी, हरिप्यारी, नारायणी, अपनी जैसी स्त्रियाँ पितृसत्तात्मक समाज द्वारा अपनी सुविधा के लिए गढ़े नियमों, आदर्शों की भेंट चढ़ जाती हैं। मुख्य पात्र सारंग संघर्ष करती है, डटी रहती है, परिवर्तन चाहती है और उस परिवर्तन के लिए उसे जो मार्ग दिखाई देता है, वह है–गाँव में प्रधान का पद, जिसका वह पर्चा भरती है। इस उपन्यास में शिक्षा का प्रसार, उसकी 'सबके लिए' उपलब्धता भी एक विषय रहा है।

'इदन्नमम' नामक उपन्यास की नायिका मंदाकिनी भी परिवर्तन हेतु निरंतर संघर्ष करती हुई दीखती है। तीन पीढ़ियों की यह कथा तीनों पीढ़ियों के अलग–अलग तरह के संघर्ष दिखाती है। पिछड़े हुए अपने गाँव में नई क्रांति का प्रवेश कराने में मंदा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। एक पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती बऊ पितृसत्तात्मक नियमों को मानती, उनका बोझ चुपचाप वहन करती दिखाई देती है तो दूसरी, मंदा की माँ मर्यादाओं को तोड़ती है और तीसरी, मंदा गाँव के विकास में अपना योगदान देती है।

अपने साक्षात्कार में मैत्रेयी जी ने कहा है कि 'मेरे स्त्री पात्र बदलाव की बात करके नहीं रह जाते, वे कर्मक्षेत्र में उतरते है। बदलाव के लिए केवल कहकर रह जाना साहित्य को अधूरा रखना है।''[2]

पुरुष और स्त्री के अंतर को इसी उपन्यास की कुसुमा नामक पात्र ने बहुत सहज भाव से बहुत खूबसूरती से, बहुत सच्चाई से बयान किया है–

''पति और पत्नी को साक्षी सहचर कहें तो निरया है कि नहीं?
कितेक उल्टा है बिन्नू बो अरथ। यह संबंध बड़ा थोथा है।
लो एक तो खूंटे बांधा पागुर, दूसरा सरग में उड़ता पंछी।''[3]
.....यही सच्चाई रही है।

'अल्माकबूतरी' नामक उपन्यास में भी तीन पीढ़ियों से संबंधित स्त्रियों की कथाएं हैं। जो शिक्षा के महत्त्व को समझती हैं, सत्ता को हाथ में लेती हैं और परिवर्तन का बीड़ा उठाती हैं। भूरीबाई हो, कदमबाई हो या नायिका उल्मा, शोषण का शिकार हो कर भी हार नहीं मानती, साहस नहीं है खोती।

'झूलानट' की शीलो पति का तिरस्कार पाती है और देवर को सौंप दी जाती है। वह 'बेचारी' की स्थिति पर अटक कर भी रह सकती थी क्योंकि वस्तु की तरह प्रयुक्त होती है पर हौंसला नहीं छोड़ती बल्कि कथा के अंत तक आते–आते पति और देवर दोनों पर हावी दिखाई

देती है। एक समय पर उसका इस्तेमाल हुआ लेकिन अपने साथ हुए अन्याय का बदला एक नए ही रूप में लेती हुई दीखती है। पति की जायदाद की हकदार इसलिए क्योंकि असल पत्नी है और देवर की जायदाद की हकदार इसलिए क्योंकि उसे सौंपी गई थी अर्थात् दोनों का फायदा लेती है।

'बेतवा बहती रही' की नायिका उर्वशी अपने धनलोभी भाई और पिता समान कामांध बरजोर सिंह के अन्याय का शिकार होती है। एक के द्वारा बेची और दूसरे के द्वारा खरीदी जाती है। हम कौन सी आधुनिकता की बात करते हैं जबकि आज भी देश में बेटियों की खरीद फरोख्त जारी है।

'अगनपाखी' की भुवनमोहिनी को हालात के कुचक्र में फँसकर अपना प्रेम त्यागना पड़ता है और भेंट चढ़ती है पागल और नामर्द विजय की। विजय की मृत्यु के बाद जेठ कुंवर अजय सिंह के अन्याय का शिकार होती है लेकिन हार नहीं मानती। पति की जायदाद का हक पाने के लिए अदालत तक जाती है।

'त्रियाहठ' उपन्यास 'बेतवा बहती रही' का ही दूसरा चरण है। संघर्षशील उर्वशी द्वारा पति की संपत्ति पुत्र के नाम करवाने की जद्दोजहद इसमें दीखती है। इस तरह मैत्रेयी जी के सभी उपन्यासों में यह विशेष रूप से लक्षित होता है कि समस्याएं अपनी जगह, जूझने का पुरजोर प्रयास अपनी जगह और निदान की ओर बढ़ा कदम, चाहे छोटा हो या बड़ा, एक हो या अनेक, वह भी इनमें अवश्य दिखाई देता है। लेखिका के स्त्री पात्र लगातार विकसित होते हैं, कहीं मूक दिखाई देते हैं तो कहीं मुखर भी हो उठते हैं। शोषण, संघर्ष की जब इंतहा हो जाती है तो वही पात्र जो मूक दिखाए गए थे, विद्रोह का शंखनाद कर मुखर हो उठते हैं। आज शहर की स्त्री की स्थिति निस्संदेह बदली है, गाँव की स्त्री ने भी शिक्षा के क्षेत्र में कदम रखना, अपने अधिकार को समझना, अपने प्रति होने वाले अन्याय का जहाँ तक संभव हो विरोध करना आरंभ कर दिया है। साहित्य में स्त्री के बदलाव की स्थिति को दिखाया जा रहा है। संभवतः यह समाज में होने वाले शनैः शनैः बदलाव का परिणाम ही होगा। इस सब से हमारी सांस्कृतिक चेतना भी निस्संदेह बदलाव के दौर से गुजर रही है। मैत्रेयी जी की रचनाओं में चित्रित स्त्री शोषण, स्त्री की कोप मुद्रा, परिवर्तन की ओर उसके बढ़ते कदम आज युगों युगों से पुरुष समाज द्वारा उसे मिले ज़ख्मों पर मरहम लगाते से लगते हैं। गांवों की सैकड़ों बच्चियाँ आज शहरों में पढ़ने आने लगी हैं। अभी भी उनके डर समाप्त नहीं हुए। शोषण और प्रयत्न दोनों का सिलसिला जारी है।

बदलाव की यह स्थिति साहित्य, विचारधारा और संस्कृति सब में दिखाई दे रही है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. मेरा रंग लाइव, 5 सितंबर, 2020 (सोशल मीडिया पर साक्षात्कार)
2. वही,
3. मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम, पृ. 83